International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(1): 544-546

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(1): 544-546
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-01-2021
Accepted: 27-02-2021

डॉ. आराधना सारवान
व्याख्याता, राज0 शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. आराधना सारवान
व्याख्याता, राज0 शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

कबीर समाज की एकता के कवि हैं

डॉ. आराधना सारवान

प्रस्तावना

कबीर भक्ति आन्दोलन के अग्रदूत हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के द्वारा तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक विसंगतियों पर गहरी चोट की है। कबीर का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवतावादी है। कबीर समाज में समाज के लिए संघर्षरत रहते हैं। उनका यह संघर्ष अनेक ऐसी शक्तियों के साथ होता है जो समाज को विखण्डित करने का कार्य करती हैं या जो सामाजिक शोषण एवं उत्पीड़न को धार्मिक एवं नैतिक स्वीकृति प्रदान करती हैं।

कबीर सामाजिक विसंगतियों के विरूद्ध कठोर और निर्भय है। समाज की रक्षा के लिए उनके अन्दर जो 'घर फूंके आपनो' की मस्ती उनमें दिखायी देती है, वह तब से लेकर आज तक के किसी संत में नहीं दिखायी दी है। अतः यह संतत्व कवि के मूल व्यक्तित्व की एक विशिष्टता है। कबीर के साहित्य एवं उनके मूल व्यक्तित्व से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उनके भक्त स्वरूप का भी गहनता से अध्ययन किया जाये।

कबीर में सामाजिक समता का जो भाव विद्यमान है, वह ईश्वर के एकत्व के अखण्ड विश्वास से ही जन्मा है। भक्त होने के कारण कवि का आध्यात्मिक विचारों से जुड़ाव है, इसी कारण सांसारिक सुखों के प्रति वो आकर्षित नहीं होते हैं। ईश्वर की भक्ति इन्हें समाज के प्रत्येक भय से मुक्त रखती है। कबीर के तत्कालीन समाज में केवल जाति–पाँति, ऊँच–नीच, और हिन्दू–मुस्लिम का ही भेदभाव नहीं था या अपितु उसमें गरीब और अमीर का भेदभाव भी विद्यमान था। किसी के पास अपार धन–सम्पदा थी तो किसी को दो वक्त का खाना भी नसीब नहीं होता था।

अधिकांश समाज में गरीबी का प्रसार था। किसानों व मजदूरों को अपना जीवन– यापन करने के लिए संघर्ष करते हुआ देखा जाता था। कबीर का समय सामाजिक अस्थिरता का युग था। भारतीय इतिहास में लगभग तुगलक वंश का अन्त और लोदीवंश के उदय–काल को ही कबीर के उदय के समय के रूप में देखा जाता है। उससे पूर्व तैमूर भारत पर आक्रमण भी कर चुका था। तैमूर का यह आक्रमण बर्बरता एवं नृषंसता की चरम अवस्था का सजीव उदाहरण है। तैमूर ने स्वयं ही कहा था कि 'वह काफिरों को दण्डित करने, मूर्ति पूजा का अन्त करने तथा हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति को नष्ट करने के लिए भारत पर आक्रमण कर रहा है।' तत्कालीन लोदीवंश का शासक सिकन्दर लोदी इस्लाम न स्वीकार करने पर हिन्दुओं की हत्या करवा देता था। वह इतना साम्प्रदायिक और अत्याचारी था कि हिन्दू मन्दिरों को तुड़वाकर मस्जिदें और सराय बनवाता था।

ऐसी ही सामाजिक परिस्थितियों के मध्य कबीर का उदय कुछ आधुनिक धारणाओं एवं विचारधाराओं के साथ होता है।

समय और परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ नाथों, सिद्धों और संतो के द्वारा हिन्दू एवं मुस्लिम (इस्लाम) के मध्य ं सामंजस्य को स्थापित करने की मंशा देखी गयी। कबीर इसी सामंजस्य के प्रेणता बने। हिन्दुओं में यह वर्णव्यवस्था तो रूढ़िगत थी ही किन्तु इस्लाम के आक्रमण के उपरान्त यह व्यवस्था और भी जड़ हो गयी थी। हिन्दुओं ने मुसलमानों के प्रहारों से स्वयं को और अपने समाज को बचाने के लिए वर्णाश्रम के आवरण को और अधिक सशक्त बना लिया था परिणामतः हिन्दुओं और मुस्लमानों के मध्य भेदभाव की खाईं और अधिक गहरी होती गयी।

कबीर ने अपने व्यक्तित्व एवं साहित्य के द्वारा इस भेदभाव की भावना को जड़ से मिटाने का आन्दोलन चलाया। कबीर ने जहां एक ओर ब्राह्मण एवं शूद्र के मध्य भेदभाव को समाप्त करने का सफल प्रयास किया वहीं दूसरी ओर हिन्दुओं और मुस्लिमों के मध्य भी भाईचारे के पैगाम के साथ सामंजस्य की स्थापना का सफलतम प्रयास किया। अन्धविश्वासों और धार्मिक आडम्बरों, धर्म के ठेकेदारों और चमत्कारवाद से हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों ही त्रस्त थे। कबीर ने ठान लिया कि समाज को इन विद्रूपताओं और विसंगतियों से बाहर निकालना है। इस सामाजिक अनैतिकता को जड़ से समाप्त

करने के लिए कबीर विद्रोही बने, और इसके लिए एक जनान्दोलन खड़ा किया। जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में कबीर का मानना है कि पूरी मानव जाति एक है, क्योंकि वह ईष्वर की संतान व रचना है। यही कारण है कि सभी मनुष्य बराबर हैं।
जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में कबीर लिखते हैं–

''गरभ बांस महि कुल नहिं जाती।
ब्रह्म बिन्दु ते सुझ उतपाती।।
कछुरे पण्डित,बामन कवि के होए।
बामन कहि कहि जनम मत खोए।।
जो तू ब्राह्मण बभनी जाया।
तो आन बाट काहे नहिं आया।।
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद।
हमकत लोहू तुम कत दूध।।
कहु कबीर जौ ब्रमहु बीचारै।
सो ब्राह्मन कहिअतु है हमारे।।''[1]

आशय यह है कि यदि कोई गर्भ में होता है तो उसकी कुल व जाति नहीं होती है। एक ही ब्रह्म बिन्दु से सबकी उत्पत्ति होती है। पण्डित! यह तो बताओ कि तुम ब्राह्मण कब से हुए? तुम अपने को ब्राह्मण कहकर अपना जन्म (जीवन) नष्ट न करो। यदि तुम ब्राह्मणी से पैदा होने के कारण ब्राह्मण हो, तो तुम में किसी दूसरे मार्ग से जन्म क्यों नहीं लिया? जब ऐसा नहीं है तो तुम कैसे ब्राह्मण और मैं कैसे शूद्र हूँ? कबीर कहते हैं, ब्राह्मण अब्राह्मण के भेद के विषय में तो हम एक ही बात मानते हैं, हम ब्राह्मण उसी को कहते हैं व मानते हैं जो ब्रह्म ज्ञानी है और जो ब्रह्म का विचार करता है। अभिप्राय यह है कि जन्म के आधार पर जाति–पाँति का भेद करना सर्वथा अनुचित है। कबीर का मानना है कि जन्म के समय सम्पूर्ण मानव की एक ही जाति होती है। जन्म के बाद उसे बनावटी ढंग से अलग–अलग जातियों में बांट दिया जाता है। इस प्रकार हमारी जाति व्यवस्था ही बनावटी एवं अप्राकृतिक है।
अचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के जाति व्यवस्थावादी विचारों में लिखते हैं–''वे मुसलमान होकर भी असल मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू भी थे और हिन्दू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे।''[2]
इससे स्पष्ट है कि कबीर का संबंध तत्कालीन समाज की सभी जातियों से था, किन्तु उनकी कोई जाति नहीं थी। दूसरे शब्दों में कबीर ने जाति की अवधारणा को अस्वीकृत कर दिया है। कबीर की दृष्टि में मानवता की एक जाति है। इसके पीछे उनका स्पष्ट तर्क है कि यदि सभी को जन्म लेने की प्रक्रिया एक ही है तो उसमें विभेद कैसे किया जा सकता है? जन्म के आधार पर समाज को कैसे बांटा जा सकता है?
कबीर ने अपने व्यवसाय के माध्यम से जाति–धर्म और छोटे–बड़े का भेद समाप्त करने का प्रयत्न किया है। यह एक अपने में अनूठा उदाहरण था कि एक भक्त व महात्मा ने अपने साधारण व्यवसाय का परित्याग किये बिना उसके महत्व और गौरव को अंगीकृत किया। इसके द्वारा कबीर की भेदभाव के प्रति दृढ़ निष्ठा का बोध होता है। भेद–भाव उत्पन्न करने में वर्ण, जाति धर्म तो सहयोगी हैं, ही साथ ही समाज में धन्धों के आधार पर भी ऊँच–नीच का भेद किया जाता है। कबीर अत्यन्त गर्व एवं अभिमान के साथ कहते हैं–

''जाति जुलाहा मति को धीर,
हरषि हरषि गुण रामै कबीर।
मेरे राम की अभय पद नगरी
कहै कबीर जुलाहा।
तू बॉमन मैं कासी का जुलाहा।।''[3]

कबीर ने अपने समाज में जहाँ भी ढोंग, दिखावा, असत्य, फरेब, कपट, आडम्बर, प्रपंच, छल, आदि देखा वहाँ उस पर जमकर प्रहार किया। पण्डित हो या फकीर हो, गुरू हो या पीर हो, योगी हो या भोगी हो, हिन्दू हो या मुसलमान हो, यदि वह जाति–पाँति व भेदभाव की विचारधारा से युक्त पाया गया तो उसे कबीर ने फटकार लगायी है।
कबीर ने उसे चेतावनी दी है, उसका उपहास उड़ाया है। व्यंग्यात्मक रूप में भी उस पर टिप्पणी की है। कबीर ने भेदभाव की समस्त सीमाओं को तोड़कर मानव को सबसे ऊपर रखा है।
इसीलिए पुरुषोत्तम अग्रवाल कबीर के लिए कहते हैं–''वर्णव्यवस्था अथवा वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा के नाम पर उस समय हिन्दू समाज में छुआछूत के साथ जातियों में अस्पृश्यता का झूठा प्रसार हो गया था–जिसको कबीर ने न तो स्वीकार किया, साथ ही उसके विरूद्ध एक आन्दोलन खड़ा किया। कबीर ने बड़े कठोर स्वरों में इस सामाजिक कलंक को मिटाने का संकल्प लिया। जाति की व्यवस्था को कबीर ने, जन्म से ही स्वीकार नहीं किया। जाति व्यवस्था निश्चय ही कोई लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं थी, होती तो कबीर और अन्य लोगों को उसकी आलोचना की अवश्यकता न पड़ती, लेकिन यह नस्लवादी व्यवस्था भी नहीं थी। जड़ता सारे समाज में नहीं, वर्णाश्रमवादी सोच में थी।''[4]
कबीर के मत के अनुसार मनुष्य और मनुष्य के मध्य की भेददृष्टि गलत है। यह चरम आज्ञानता का सूचक है। इन्हीं अपने ही विचारों से प्रेरित होकर कबीर ने जाति–पाँति, छुआ–छूत, ऊँच–नीच और ब्राह्मण–शूद्र के भेद का विरोध किया। कवि का मानना है कि इन भेदों को समाप्त कर देने पर समाज का एक परिष्कृत स्वरूप सामने आयेगा।
ब्राह्मण–शूद्र के भेद से विरक्त छुआ–छूत से मुक्त जाति–पाँति रहित समाज का स्वप्न कबीर ने देखा था जिसको साकार करने का कार्य अंतिम क्षणों तक उनके द्वारा किया गया।

''एक बूंद तै, सृष्टि रची है,
कौन ब्राह्मण, कौन शूद्रा।।''[5]

जब एक ही बूंद से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई तो इसमें विभेद कैसा। यहां कौन ब्राह्मण है अथवा कौन शूद्र है? कबीर के अनुसार दोनों में कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार ब्राह्मण पैदा होते हैं ठीक उसी प्रकार अन्य जाति के लोग भी पैदा होते हैं।
कबीर ने जाति पांति एवं छुआ–छूत का विरोध करते हुए कहा कि पण्डित तुम कहते हो कि पवित्र स्थान पर भोजन करना चाहिए। बताओ कौन सा स्थान पवित्र मानते हो? तुम इस गहनता से विचार करोगे तो माता–पिता भी जूठें हैं। वृक्षों पर लगने वाले सारे फल भी जूठें हैं। अग्नि और जल भी जूठें हैं। जूठीं कलछी से ही अन्न परोसा जाता है। वस्तुतः पवित्र और शुद्ध तो वहीं हैं जिनका मन पवित्र है। जिन्होंने अपने आंतरिक अवगुणों को दूर कर लिया है। जिनके अन्दर से भेद–भाव की विचारधारा निकल गयी है, वही वास्तव में पवित्र है।

''कहु पण्डित सूचा कवन ठाउ।
जहाँ बैसि हउँ भोजन खाउ।
माता जूठी पिता भी जूठा जूठे ही फल लागे।
आवहिं जूठे जाहिं जाहि भी जूठै मरहिं अभागे।।
अगिनि भी जूठी पानी जूठा जूठै वैसि पकाया।।
जूठी करछी अन्न परोसा जूठै जूठा खाया।
गोबर जूठा चउका जूठा जूठै दीनी कारा।।
कहँ कबीर तेई जन सूजे हरि भजि तजहिं विकारा।।''[6]

आरम्भिक काल से भारतीय समाज में वर्णाश्रमवादी व्यवस्था थी। वर्णमिश्रण के कारण नित नयी जातियों का विकास भी होता रहा। व्यापार में संलग्न ब्राह्मण स्वयं व्यापारी बन रहे थे, मजदूर व

आदिवासी भी राजाओं की राजसभा में उच्च स्थान पर आसीन थे, किन्तु जन्म के आधार पर जाति विभाजन का आरम्भ हमारी औपनिवेशिक आधुनिकता के परिणाम स्वरूप ही होता है। जाति व्यवस्था का पदानुक्रम रक्तशुद्धि पर ही आधारित था। इसको न तो व्यापार प्रभावित कर रहा था, न राजसत्ता से यह व्यवस्था प्रभावित हो रही थी। अतः इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि जाति की कल्पनाएँ वास्तविक रूप में औपनिवेशिक सत्ता और उनके द्वारा फैलाये गये भ्रम के परिणाम स्वरूप लागू हुई। इस जाति की अवधारणा को विकसित करने के पीछे औपनिवेशिक सत्ता का उद्देश्य स्पष्ट है कि वह यहाँ के स्वदेशी व्यापार को नष्ट कर अपने व्यापार का विस्तार करना चाहते थे। ऐसी असामाजिक व्यवस्था को कबीर जैसे समाज सुधारक समाप्त करना चाहते थे। समाज में एकता और सामूहिकता को स्थापित कर मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचान मिले इसके पक्षधर रहे कबीर। कबीर की कविताओं में समाज को नई दिशा देने की चेतना दिखाई देती है।

कबीर का सम्पूर्ण साहित्य अहिंसा मूलक समाज व्यवस्था का पक्षधर है। वस्तुतः कबीर उदारवादी समाज सुधारक थे। सर्वधर्म समभाव उनके चिंतन का मूल आधार है। कबीर अद्वैत वेदांत के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वे जीवन से पलायन की शिक्षा न देकर जीवन को उचित ढंग से जीने का मार्गदर्शन करते हैं। उनका अद्वैतवाद समाज में एकता का प्रेरक है। वे अंधानुकरण के मार्ग में भ्रमित और कुंठित समाज को घृणा, द्वेश, क्रोध और हिंसा का त्यागकर सत्यासत्य के विवेक पर आत्मिक मनोबल विकसित करने की सलाह देते हैं।

कथनी और करनी की एकरूपता व्यक्ति–विकास तथा सामाजिक समरसता के लिए जरूरी है। जब तक सामान्य स्तर से लेकर जीवन के उच्चस्तरों पर बैठे सुधीजनों की कथनी और करनी में अंतर परिलक्षित होगा, तब तक सभ्य और सुसंस्कृत समाज की कल्पना एक छलावा और स्वयं के साथ बेइमानी ही है। वर्तमान समाज में आज कथनी और करनी में निरंतर दूरी दिखाई देती है। समाज में चारों और हिंसा और बरबादी के अलावा कुछ भी नजर नहीं आता। आज यदि सम्पूर्ण समाज तथा विश्व को किसी चीज की आवश्यकता है तो वह है कबीर की कथनी और करनी में निहित एकरूपता की भावना को स्वीकार करने की। 'विश्व शांति' की कल्पना को साकार करने और हिंसा से विश्व समुदाय को परावृत्त करने की दिशा में कबीर की कविता सटीक प्रतीत होती हैं।

अतः स्पष्ट है कि कबीर दास जी की सामाजिक चेतना अपने युग से बहुत आगे की रही है। वे उस रूढ़िवादी मध्यकालीन युग में सामाजिक समता और आडंबर हीन समाज की वह दृष्टि रखते थे जो विज्ञान और संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद आधुनिक काल में भी आज तक लक्ष्य मात्र है।

संदर्भ

1. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पृ.–268 प्रकाशक–विश्वभारती, दिल्ली–2020
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ.–144 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
3. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पृ.–306 प्रकाशक–विश्वभारती, दिल्ली–2020
4. पुरुषोत्तम अग्रवाल, अकथ कहानी प्रेम की, पृ.–131, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2012
5. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पृ.–197 प्रकाशक–विश्वभारती, दिल्ली–2020
6. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, पृ.–352 प्रकाशक–विश्वभारती, दिल्ली–2020